रघुवीर सहाय

जीवन परिचय

रघुवीर सहाय का जन्म 9 दिसम्बर, 1929 को लखनऊ के मॉडल हाउस मुहल्ले में एक शिक्षित मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। इनके पिता श्री हरदेव सहाय लखनऊ के 'बाँय एंग्लो बंगाली स्कूल' में साहित्य के अध्यापक थे। जन्म के दो ही वर्ष बाद इनकी माँ श्रीमती तारा देवी का देहान्त हो गया। बालक रघुवीर सहाय की शिक्षा-दीक्षा लखनऊ में ही हुई थी। लखनऊ विश्वविद्यालय से इन्होंने 1951 ई. में अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की थी। इंटर में अध्ययन-काल से ही इन्हें कविता लिखने का शौक था। 1946 से लेकर 1948 तक इनकी कविताएँ 'आजकल', 'प्रतीक' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं। 1949 में ही इन्होंने 'दूसरा सप्तक' में प्रकाशन के लिए अपनी कविताएँ 'अज्ञेय' को दे दी थीं, जो 1951 में 'दूसरा सप्तक' में प्रकाशित हुईं। 1951 में, एम.ए. करने बाद ये 'अज्ञेय' द्वारा सम्पादित 'प्रतीक' में सहायक सम्पादक होकर दिल्ली आ गए। 'प्रतीक' के बंद हो जाने पर इन्होंने आकाशवाणी, दिल्ली के समाचार विभाग में उप-संपादक का कार्य-भार संभाला।

रघुवीर सहाय का विवाह प्रो. महादेव प्रसाद, अध्यक्ष अंग्रेज़ी विभाग, वी.एस.एस.डी. कॉलेज, कानपुर की पुत्री विमलेश्वरी देवी से 1957 ई. में हुआ। विवाह के बाद 1957 में ही आकशवाणी से त्याग-पत्र देकर इन्होंने मुक्त लेखन को जीवन-यापन का आधार बनाया। इसी वर्ष इनकी'हमारी हिंदी' शीर्षक कविता 'युग-चेतना' पत्रिका में छपी। इस कविता को लेकर काफी बावेला मचा। इस कविता में हिंदी को 'दुहाजू की बीवी' कहा गया था, जिसपर अनेक टीका-टिप्पणियाँ हुईं। लेकिन इस विवाद के माध्यम से रघुवीर सहाय हिंदी कविता जगत में काफी चर्चित भी हुए। अगस्त, 1959 में आकाशवाणी में तीन साल के अनुबंध पर इनकी नियुक्ति हुई। आकाशवाणी से मुक्त होने पर दैनिक 'नवभारत टाइम्स' में विशेष संवाददाता बने। मार्च, 1968 में 'नवभारत टाइम्स' से स्थानांतरित होकर समाचार सम्पादक के रूप में इनकी नियुक्ति हिंदी के विशिष्ट साप्ताहिक पत्र 'दिनमान' में हुई। 'अज्ञेय' के त्याग-पत्र देने के पश्चात् 1970 में 'दिनमान' के सम्पादक बने। अपने व्यवस्था-विरोधी रुख के कारण 1982 में इन्हें 'दिनमान' के सम्पादक पद से हटा कर 'नवभारत टाइम्स' में स्थानांतरित किया गया। इस अवैध स्थानांतरण के विरोध में 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' प्रकाशन से इन्होंने 1983 में त्याग-पत्र देकर स्वतंत्र लेखन को जीविका का आधार बनाया। 30 दिसम्बर, 1990 को इनका निधन हो गया।

साहित्यक योगदान

रघुवीर सहाय हिंदी जगत में एक कवि के रूप में अधिक जाने जाते हैं। ये साहित्य-जगत में उस पीढ़ी के सदस्य थे, जो स्वाधीनता आंदोलन की समाप्ति पर रचनाशील हुई थी। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद जो नयी काव्यधारा उभरकर सामने आई, उसमें रचनाकारों का

एक बड़ा समुदाय लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति उदासीन और ग़ैर-राजनीतिक या राजनीति-विरोधी होता गया। यह उस समय के शासक वर्ग की एक अपेक्षा भी थी कि इस नये मध्य-वर्ग को उस आदर्श भावना और जनतांत्रिक मूल्यों से काट दिया जाए, जो सामाजिक रूपांतरण को बढ़ावा देते हों। उस दौर के अनेक कवियों ने आत्म-संस्कार या सामाजिक संस्कार से अपने को अलग रखकर ही अपनी आधुनिकता को सार्थक माना। लेकिन उस काव्यधारा के लगभग एकमात्र कवि रघुवीर सहाय ही थे, जिन्होंने अपनी जनतांत्रिक संवेदनशीलता को कायम रखा। यह सही है कि बिना किसी विचारधारा का सहारा लिए इन्होंने स्व-विवेक के आधार पर जीवन और समाज के प्रति अपने रुख का निर्धारण किया। इस तथ्य का एक हल्का आभास 'सीढ़ियों पर धूप में' संगृहीत उनकी कुछ कविताओं में मिलने लगता है, लेकिन 'आत्महत्या के विरुद्ध' शीर्षक काव्य-संग्रह की बहुत-सी कविताओं में उनकी लोकतांत्रिक चेतना की अभिव्यक्ति स्पष्ट होकर हमारे समाने आती है।

'हँसो-हँसो जल्दी हँसो' संग्रह की अधिकांश कविताएँ रघुवीर सहाय के सामाजिक और नैतिक सरोकारों को संकेतित करती हैं। यह संग्रह आपातकाल की पूर्वपीठिका पर आधारित है। 1972 से 1975 के मध्य लिखी गईं इनकी कविताएँ इसमें संकलित हैं। आपातकाल के पूर्व के सन्नाटे और चुप्पी को इसमें पूरी तरह उजागर किया है। इनकी एक कविता 'आने वाला खतरा' आपातकाल के आगामी खतरे का संकेतक है। यह कविता 1974 में लिखी गई थीं, जब बिहार के साथ ही पूरे देश में एक ज़ोरदार संघर्ष चल रहा था। शासक समुदाय पैसे, शक्ति और सेंसरशिप के माध्यम से आतंक के नए रास्ते ढूंढ़ने लगा था। इन सारी स्थितियों को देखते हुए रघुवीर सहाय द्वारा आपातकाल का पूर्वाभास अंतश्चेतना के आधार पर की गई भविष्यवाणी न होकर उनके द्वारा यथार्थ पहचान पर आधारित था।

'आत्महत्या के विरुद्ध' संग्रह में कई कविताएँ प्रकृति के नाना दृश्यों से सम्बद्ध हैं। वैसे रघुवीर सहाय प्रकृति के सहज सौदर्य के कवि नहीं हैं। प्रकृति उनकी कविता में संश्लिष्ट मानवीय अनुभव बनकर ही आती है। इस संग्रह में उनकी पंक्तियाँ हैं -'देखों वृक्ष को देखो कुछ कर रहा है/किताबी होगा वह कवि जो कहेगा/हाय पत्ता झर रहा है।' पतझर में नयी रचना का संकेत उत्पीड़ित-शोषित जीवन में नए बदलाव को भी संकेतित करता है।

'लोग भूल गए हैं' की बहुत-सी कविताएँ अपनी गद्यात्मकता के कारण निबंधात्मक हो गई हैं। इस संग्रह की कुछ पंक्तियाँ हैं -'संस्कृति मंत्री से कहा राजा ने - देखो-देखो मंत्री जी/हर एक विधा के भीतर कितने ही प्राचीन कला रूप हैं क्या तुम्हें यह उपयोगी नहीं दिखायी देता?/क्यों नहीं तुम सैकड़ों कलाकार इसी काम पर लगा देते/कि वे उनमें से पुराने रूप लेकर नई रचनाएँ करें?/क्या तुम नही समझ पाते कि यह उनको एक अनिश्चित आगामी कल/रचने से रोक रखने का सरलतम ढंग है।' यह कविता तत्कालीन शासक वर्ग की सांस्कृतिक नीति का पर्दाफाश करती है, जिसमें कला और साहित्य में लोक रूपों, लोक

नाटकों, लोक नृत्यों के साथ ही पुराने साहित्य-रूपों के ग्रहण को बढ़ावा दिया जा रहा था। उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि रघुवीर सहाय अपने वर्तमान के यथार्थ के आलोचक कवि रहे हैं। यद्यपि सामाजिक परिवर्तन को उन्होंने अपनी कविता का विषय नहीं बनाया, फिर भी वे सामाजिक परिवर्तन की अनिवार्यता को रेखांकित अवश्य करते रहे हैं। उनकी व्यक्ति चेतना उनकी सामाजिक चेतना पर प्रायः हावी होती रही है। बावजूद इसके वे एक अत्यंत संवेदनशील और ईमानदार कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं।

नयी कविता के अन्य कवियों की भाँति, रघुवीर सहाय ने प्रतीकों, बिम्बों और मिथकों का सहारा बहुत कम लिया है। इन्होंने साधारण बोलचाल की भाषा के अति-साधारण शब्दों का प्रायः गद्यवत प्रयोग ही अधिक किया है। इसे डॉ. नामवर सिंह ने असाधारण साधारणता के नाम से गौरवान्वित किया है। वस्तुतः असाधारणता रघुवीर सहाय के नाटकीय शिल्प के माध्यम से आई है। इसका एक उदाहरण है :

चौड़ी सड़क गली पतली थी
दिन का समय घनी बदली थी
रामदास उस दिन उदास था
अंत समय आ गया पास था।
उसे बता यह दिया गया था उसकी हत्या होगी।

यहाँ एक तरफ शुद्ध गद्यात्मक वाक्य की बनावट और दूसरी ओर बेहद नाटकीय, लयात्मक, तुकात्मक विधान द्वारा वर्णनात्मकता के समुचित विधान द्वारा नाटकीय योजना साधारण अभिव्यक्ति को असाधारणता में बदल देती है। हल्की-फुल्की तुकबंदी यहाँ करुणा और आतंक की विडम्बना को साकार करती है। यहाँ प्रश्न उठता है कि इस प्रकार का काव्य-कौशल क्या नयी कविता के शिल्प से मुक्ति का प्रयास मात्र है? वस्तुतः यह समय का दबाव था, जिसमें नग्न होती हुई राजनीति को उद्घाटित करने के लिए यह पद्धति अनिवार्य बन गई थी। उस समय नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं और त्रिलोचन के गद्यात्मक सोनेटों में इस पद्धति का भरपूर सहारा लिया जा रहा था। यह कार्य रघुवीर सहाय ने भी अत्यंत कौशल के साथ सम्पन्न किया। 'आत्महत्या के विरुद्ध' संग्रह की 'स्वाधीन व्यक्ति', 'अधिनायक', 'भीड़ में मैकू और मैं', 'फिल्म के बाद चीख', 'हमारी हिंदी' आदि बहुत सारी कविताओं में रघुवीर सहाय ने इसी शिल्प का उपयोग किया है। इस शैली में वे यथार्थ का सिर्फ वर्णन ही नहीं करते, उसका अन्वेषण भी करते हैं। इस अन्वेषण में एक विशेष प्रकार का वक्रोक्ति-विधान है, जिसे वक्रोक्ति के शास्त्रीय ढाँचे में कैद नहीं किया जा सकता। कुछ आलोचकों ने इसे भाषा का 'खेल' भी कहा है। लेकिन यह 'खेल' अत्यंत सार्थक ढंग से कविता को यथार्थ से जोड़ता है।

'आत्महत्या के विरुद्ध' की यह शैली'हँसो-हँसो जल्दी हँसो' में करुणा, साहस, भय और आतंक के साथ मिलकर एक नया रूप धारण करती है।

'एक दिन इसी तरह आएगा - रमेश/कि किसी की कोई राय न रह जाएगी - रमेश/क्रोध होगा पर विरोध न होगा/अर्जियों के सिवाय - रमेश/खतरा होगा खतरे की घंटी होगी/और उसे बादशाह बजाएगा - रमेश/' आपातकाल के रूप में आने वाले आगामी संकट की यह कलात्मक अभिव्यक्ति है। वस्तुतः इसे भाषा का खेल या सपाटबयानी मात्र न कहकर आतंक को प्रकट करने की साहसिक मुद्रा के रूप में देखना चाहिए। इस प्रकार, गद्यात्मक रचना-विधान, असाधारण साधारणता, अतिशय नाटकीयता आदि को रघुवीर सहाय के काव्य की शिल्पगत विशेषता के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। रघुवीर सहाय की रचनाएँ निम्नलिखित हैं :

कविता संग्रह : 'सीढ़ियों पर धूप में', 'आत्महत्या के विरुद्ध', 'हँसो-हँसो जल्दी हँसो', 'लोग भूल गए हैं' और 'कुछ पते और कुछ चिट्ठियाँ'।

कहानी संग्रह : 'रास्ता इधर से है' और 'जो आदमी हम बना रहे हैं'

निबंध संग्रह : 'लिखने का कारण (1978),'ऊबे हुए सुखी' (1983),'वे और नहीं होंगे जो मारे जाएँगे' (1983),'भँवर लहरें और तरंग' (1983),'शब्द शक्ति' (1984) तथा 'यथार्थ यथास्थिति नहीं'।

अनुवाद : मेकबेथ और ट्वेल्थ नाइट (शेक्सपियर का नाटक) का पद्यानुवाद, 12 हंगरी कहानियों का अनुवाद, 30 हंगरी कविताओं का अनुवाद, तीन हंगरी नाटकों का अनुवाद, लोर्का के 'हाउस ऑफ बर्नाडा' का गद्यानुवाद।

दे दिया जाता हूँ

मुझे नहीं मालूम था कि मेरी युवावस्था के दिनों में भी
यानी आज भी
दृश्यालेख इतना सुन्दर हो सकता है :
शाम को सूरज डूबेगा
दूर मकानों की क़तार सुनहरी बुन्दियों की झालर
बन जायेगी
और आकाश रंगारंग होकर हवाई अड्डे के विस्तार पर उतर
आयेगा
एक खुले मैदान में हवा फिर से मुझे गढ़ देगी
जिस तरह मौक़े की माँग हो :
और मैं दे दिया जाऊँगा।

इस विराट नगर को चारों ओर से घेरे हुए
बड़े बड़े खुलेपन हैं, अपने में पलटे खाते बदलते शाम
के रंग
और आसमान की असली शक्ल।
रात में वह ज़्यादा गहरा नीला है और चाँद
कुछ ज़्यादा चाँद के रंग का
पत्तियाँ गाढ़ी और चौड़ी और बड़े वृक्षों में एक नयी खुशबू-
वाले गुच्छों में सफ़ेद फूल
अन्दर, लोग;
जो एक बार जन्म लेकर भाई बहन माँ बच्चे बन
चुके हैं
प्यार ने जिन्हें गला कर उनके अपने साँचों में हमेशा
के लिए
ढाल दिया
और जीवन के उस अनिवार्य अनुभव की याद
उनकी जैसी धातु हो वैसी आवाज़ उनमें बजा जाती है

सुनो सुनो, बातों का शोर;
शोर के बीच एक गूँज है जिसे सब दूसरों से छिपाते हैं
-कितनी नंगी और कितनी बेलौस-
मगर आवाज़ जीवन का धर्म है इसलिए मढ़ी हुई करतालें
बजाते हैं
लेकिन मैं,

जो कि सिर्फ़ देखता हूँ, तरस नहीं खाता, न चुमकारता, न
क्या हुआ क्या हुआ करता हूँ।
सुनता हूँ, और दे दिया जाता हूँ।
देखो, देखो, अँधेरा है
और अँधेरे में एक खुशबू है किसी फूल की
रोशनी में जो सूख जाती है

एक मैदान है जहाँ हम तुम और ये लोग सब लाचार हैं
मैदान के मैदान होने के आगे।
और खुला आसमान है जिसके नीचे हवा मुझे गढ़ देती है
इस तरह कि एक आलोक की धारा है जो बाँहों में लपेट
कर छोड़
देती है और गन्धाते, मुँह चुराते, टुच्ची-सी आकांक्षाएँ
बार-बार
ज़बान पर लाते लोगों में
कहाँ से मेरे लिए दरवाज़े खुल जाते हैं जहाँ ईश्वर
और सादा भोजन है और
मेरे पिता की स्पष्ट युवावस्था।
सिर्फ उनसे मैं ज़्यादा दूर-दूर तक हूँ
कई देशों के अधभूखे बच्चे
और बाँझ औरतें, मेरे लिए
संगीत की ऊँचाइयों, नीचाइयों में गमक जाते हैं
और ज़िन्दगी के अन्तिम दिनों में काम करते हुए बाप
काँपती साइकिलों पर
भीड़ में से रास्ता निकाल कर ले जाते हैं
तब मेरी देखती हुई आँखें प्रार्थना करती हैं
और जब वापस आती हैं अपने शरीर में, तब वह दिया जा
चुका होता है।
किसी शाप के वश बराबर बजते स्थानिक पसन्द के परेशान
संगीत में से
एकाएक छन जाता है मेरा अकेलापन
आवाज़ों को मूर्खों के साथ छोड़ता हुआ
और एक गूँज रह जाती है शोर के बीच जिसे सब दूसरों
से छिपाते हैं
नंगी और बेलौस,
और उसे मैं दे दिया जाता हूँ।

दुनिया

हिलती हुई मुँडेरें हैं और चटखे हुए हैं पुल
बरेरे[1] हुए दरवाज़े हैं और धँसते हुए चबूतरे
दुनिया एक चुरमुराती हुई सी चीज़ हो गयी है
दुनिया एक पपड़ियायी हुई सी चीज़ हो गयी है

लोग आज भी खुश होते हैं
पर उस वक़्त एक बार तरस ज़रूर खाते हैं
लोग ज़्यादातर वक़्त संगीत सुना करते हैं
पर साथ साथ और कुछ ज़रूर करते रहते हैं
मर्द मुसाहबत किया करते हैं, बच्चे स्कूल का काम
औरतें बुना करती हैं- दुनिया की सब औरतें मिल कर
एक दूसरे के नमूनोंवाला एक अनन्त स्वेटर
दुनिया एक चिपचिपायी हुई सी चीज़ हो गयी है।

लोग या तो कृपा करते हैं या खुशामद करते हैं
लोग या तो ईर्ष्या करते हैं या चुगली खाते हैं
लोग या तो शिष्टाचार करते हैं या खिसियाते हैं
लोग या तो पश्चात्ताप करते हैं या घिघियाते हैं
न कोई तारीफ़ करता है न कोई बुराई करता है
न कोई हँसता है न कोई रोता है
न कोई प्यार करता है न कोई नफरत
लोग या तो दया करते हैं या घमण्ड
दुनिया एक फँफुदियायी हुई सी चीज़ हो गयी है।

लोग कुछ नहीं करते जो करना चाहिए तो लोग करते
क्या हैं
यही तो सवाल है कि लोग करते क्या हैं अगर कुछ
करते हैं

लोग सिर्फ़ लोग हैं, तमाम लोग, मार तमाम, लोग
लोग ही लोग हैं चारों तरफ़ लोग, लोग, लोग
मुँह बाये हुए लोग और आँख चुँधियाये हुए लोग
कुढ़ते हुए लोग और बिराते हुए लोग
खुजलाते हुए लोग और सहलाते हुए लोग
दुनिया एक बजबजायी हुई सी चीज़ हो गयी है।

---

1 टूटे हुए

आत्महत्या के विरुद्ध

समय आ गया है जब तब कहता है सम्पादकीय
हर बार दस बरस पहले मैं कह चुका होता हूँ कि समय आ गया है।

एक ग़रीबी, ऊबी, पीली, रोशनी, बीबी
रोशनी, धुन्ध, जाला, यमन, हरमुनियम अदृश्य
डब्बाबन्द शोर
गाती गला भींच आकाशवाणी
अन्त में टड़ंग।

अकादमी की महापरिषद् की अनन्त बैठक
अदबदा कर निश्चित कर देती है जब कुछ और नहीं पाती
तो ऊब का स्तर
एक सीली ऊँगली का निशान डाल दस्तख़त कर
तले हुए नाश्ते की तेलौस मेज़ पर।

नगरनिगम ने त्योहार जो मनाया तो जनसभा की
मन्थर भटकता मन्त्री मुसद्दीलाल महन्त मंच पर चढ़ा
छाती पर जनता की
बसन्ती रंग जानते थे न पंसारी न मुसद्दीलाल
दोनों ने राय दी
कन्धे से कन्धा भिड़ा ले चलो
पालकी।

कल से ज़्यादा लोग पास मँडराते हैं
ज़रूरत से ज़्यादा आसपास ज़रूरत से ज़्यादा नीरोग
शक से कि व्यर्थ है जो मैं कर रहा हूँ
क्योंकि जो कह रहा हूँ उसमें अर्थ है।

कल मैंने उसे देखा लाख चेहरों में एक वह चेहरा
कुढ़ता हुआ और उलझा हुआ वह उदास कितना बोदा
वही था नाटक का मुख्यपात्र
पर उसकी ठस पीठ पर मैं हाथ रख न सका
वह बहुत चिकनी थी।

लौट आओ फिर उसी खाते-पीते स्वर्ग में
पिटे हुए नेता, पिटे अनुचर बुलाते हैं
मार फड़फड़ाते हैं पंख साल दो साल गले बँधी घंटियाँ
पढ़ी-लिखी गरदनें बजाती हैं फिर उड़ जाता है विचार
हम रह जाते हैं अधेड़
कुछ होगा कुछ होगा अगर मैं बोलूँगा
न टूटे न टूटे तिलिस्म सत्ता का मेरे अन्दर एक कायर टूटेगा टूट
मेरे मन टूट एक बार सही तरह
अच्छी तरह टूट मत झूठमूठ ऊब मत रूठ
मत डूब सिर्फ़ टूट जैसे कि परसों के बाद
वह आया बैठ गया आदतन एक बहस छेड़कर
गया एकाएक बाहर ज़ोरों से एक नक़ली दरवाज़ा
भेड़कर
दर्द दर्द मौने कहा क्या अब नहीं होगा
हर दिन मनुष्य से एक दर्ज़ा नीचे रहने का दर्द
गरज़ा मुस्टंडा विचारक-समय आ गया है
कि रामलाल कुचला हुआ पाँव जो घसीटकर
चलता है अर्थहीन हो जाये।

छुओ
मेरे बच्चे का मुँह
गाल नहीं जैसा विज्ञापन में छपा
ओंठ नहीं
मुँह
कुछ पता चला जान का शोर डर कोई लगा
नहीं-बोला मेरा भाई मुझे पाँव-तले
रौंदकर, अंग्रेज़ी।

कितना आसान है पागल हो जाना
और भी जब उस पर इनाम मिलता है
नक़ली दरवाज़े पीटते हैं जवान हाथों को
काम सर को आराम मिलता है : दूर
राजधानी से कोई क़स्बा दोपहर बाद छटपटाता है
एक फटा कोट एक हिलती चौकी एक लालटेन
दोनों, बाप मिस्तरी, और बीस बरस का नरेन

दोनों पहले से जानते हैं पेंच की मरी हुई चूड़ियाँ
नेहरू-युग के औज़ारों को मुसद्दीलाल की सबसे बड़ी देन

अस्पताल में मरीज़ छोड़कर आ नही सकता तीमारदार
दूसरे दिन कौन बतायेगा कि वह कहाँ गया
निष्कासित होते हुए मैंने उसे देखा था
जयपुर-अधिवेशन जब समेटा जा रहा था
जो मजूर लगे हुए थे कुर्सी ढोने में
उन्होंने देखा एक कोने में बैठा है
अजय अपमानित
वह उसे छोड़ गये
कुर्सी को
सन्नाटा छा गया

कितना आसान है नाम लिखा लेना
मरते मनुष्य के बारे में क्या करूँ क्या करूँ मरते मनुष्य का
अन्तरंग परिषद से पूछकर तय करना कितना
आसान है कितनी दिलचस्प है नेहरू की
आशंसा पाटिल की भर्त्सना की कथा
कितनी घुटन के अन्दर घुटन के
अन्दर घुटन से कितनी सहज मुक्ति

कितना आसान है रख लेना अपने पास अपना वोट
क्योंकि प्रतिद्वन्द्वी अयोग्य है
अत्याचारी हत्या किये जाय जब तक कि स्वर्णधूलि
स्वर्णशिखर से आकर आत्मा के स्वर्णखण्ड
किये जाय
गोल शब्दकोश में अमोल बोल तुतलाते
भीमकाय भाषाविद हाँफते डकारते हँकाते
अँगरेज़ी की अवध्य गाय
घंटा घनघनाते पुजारी जयजयकार
सरकार से क़रार जारी हज़ार शब्द रोज़
क़ैद
रोज़ रोज़ एक और दर्द एक क्रोध एक बोध
और नापैद

कल पैदा करना होगा भूखी पीढ़ी को
आज जो अनाज पेट भरता है
लो हम चले यह रक्खे हैं उर्वरक संबंधी
कुछ विचार
मुन्न से बोले विनोबा से जैनेन्द्र दिल्ली में बहुत बड़ी लपसी
पकायी गयी युद्ध से बदहवास
जनता के लिए लड़ो या न लड़ो
भारत पाकिस्तान अलग-अलग करो
फिर मरो कढ़िल कर
भूल जाओ
राजनीति
अध्यापक याद करो किसके आदमी हो तुम
याद करो विद्यार्थी तुम्हें आदमी से
एक दर्जा नीचे
किसका आदमी बनना है-दर्द ?
दर्द, खैराती अस्पताल में डॉक्टर ने कहा वह मेरा काम नहीं
वह मुसद्दी का है
वही भेजता है मुझे लिखकर इसे अच्छा करो
जो तुम बीमार हो तुमने उसे खुश नहीं किया होगा
अब तुम बीमार हो तो उसे खुश करो
कुछ करो
उसने कहा लोहिया से लोहिया ने कहा
कुछ करो
खुश हुआ वह चला गया अस्पताल में भीड़
भौचक भीड़ धाँय धाँय
सौ हज़ार लाख दर्द आठ दस क्रोध
तीन चार बन्द बाज़ार भय भगदड़ गर्द
लाल
छाँह धूप छाँह, नहीं घोड़े बन्दूक
धुआँ खून ख़त्म चीख
कर हम जानते नहीं
हम क्या बनाते हैं
जब हम दफ़नाते हैं

एक हताश लड़के की लाश बार-बार
एक बेबसी

थोड़ी-सी मिटती है
फिर करने लगती है भाँय-भाँय
समय जो गया है उसके सन्नाटे में राष्ट्रपति
प्रकटे देते हुए सीख समाचारपत्र में छपी
दुधमुँही बच्ची खाती हुई भीख
खिसियाते कुलपति
मुसद्दीलाल
घिघियाते उपकुलपति
एक शब्द कहीं नहीं कि वह लड़का कौन था
क्या उसके बहनें थीं
क्या उसने रक्खे थे टीन के बक्से में अपने अजूबे
वह कौन-कौन से पकवान
खाता था
एक शब्द कहीं नहीं एक वह शब्द जो वह खोज
रहा था जब वह मारा गया।

सन्नाटा छा गया
चिट्ठी लिखते लिखते छुटकी ने पूछा
'क्या दो बार लिख सकते हैं कि याद
आती है ?'
'एक बार मामी की एक बार मामा की ?'
'नहीं, दोनों बार मामी की'
'लिख सकती हो ज़रूर बेटी ,' मैंने कहा
समय आ गया है
दस बरस बाद फिर पदारूढ़ होते ही
नेतराम, पदमुक्त होते ही न्यायाधीश
कहता है -समय आ गया है-
मौका अच्छा देखकर प्रधानमन्त्री
पिटा हुआ दलपति अख़बारों से
सुंदर नौजवानों से कहता है गातां बजाता
हारा हुआ देश।
समय जो गया है
मेरे तलुवे से छन कर पाताल में
वह जानता हूँ मैं।

लुभाना

बड़ी किसी को लुभा रही थी
चालिस के ऊपर की औरत
घड़ी घड़ी खिलखिला रही थी
चालिस के ऊपर की औरत
खड़ी अगर होती वह थककर
चालिस के ऊपर की औरत
तो वह मुझको सुन्दर लगती
चालिस के ऊपर की औरत
ऐसे दया जगाती थी वह
चालिस के ऊपर की औरत
वैसे काम जगाती शायद
चालिस के ऊपर की औरत

अंधी पिस्तौल

सुरक्षा अधिकारी सेनाधिपति के
घूर कर देखते हैं मेरा चेहरा
बहुत दिनों से उन्होंने नही देखा है मेरा चेहरा
धीरे-धीरे कम होती गयी है मेरी और सेनाधिपति की
बातचीत
इसलिए मैं सिपाहियों की निगाह में अजनबी हो गया हूँ

ये सिपाही भी कोई दूसरे हैं
पहले जो थे कुछ अदब करते थे
मेरा भी और उनका भी
अब जो हैं इतने उजड्ड हैं कि मैं
सेनाधिपति के लिए चिंतित हूँ

वे वरदी नहीं पहने हैं सिर्फ़ कमीज़ पतलून
उसके नीचे वे सौ फ़ीसदी हिंदोस्तानी हैं

उन्हें वरदी पहनायी गयी होती तो अच्छा रहता
अब जब वे पिस्तौल निकालेंगे कितना अचरज होगा
और किस पर दागेंगे यह देखकर तो
और भी ज्यादा

पैदल आदमी

जब सीमा के इस पार पड़ी थीं लाशें
तब सीमा के उस पार पड़ी थीं लाशें
सिकुड़ी ठिठरी नंगी अनजानी लाशें

वे उधर से इधर आ करके मरते थे
या इधर से उधर जा करके मरते थे
यह बहस राजधानी में हम करते थे

हम क्या रुख़ लेंगे यह इस पर निर्भर था
किसका मरने से पहले उनको डर था
भुखमरी के लिए अलग-अलग अफ़सर था

इतने में दोनों प्रधानमंत्री बोले
हम दोनों में इस बरस दोस्ती हो ले
यह कह कर दोनों ने दरवाज़े खोले

परराष्ट्र मंत्रियों ने दो नियम बताये
दो पारपत्र उसको जो उड़कर आये
दो पारपत्र उसको जो उड़कर जाये

पैदल को हम केवल तब इज़्जत देंगे
जब देकर के बंदूक उसे भेजेंगे
या घायल से घायल अदले-बदलेंगे

पर कोई भूखा पैदल मत आने दो
मिट्टी से मिट्टी को मत मिल जाने दो
वरना दो सरकारों का जाने क्या हो

सड़क पर रपट

देखों सड़क पार करता है पतला दुबला बोदा आदमी
आती हुई टरक का इसको डर नहीं
या कि जल्दी चलने का इसमें दम नहीं रहा
आँख उठा देखता है वह डरेवर को
देखो मैं ऐसे ही चल पाता हूँ

मैंने इस तरह के आदमी इस बरस पिछले के मुकाबले बहुत
देखे जिनको खाने को पूरा नहीं मिला बरस भर
कैसे भी पहुँच जाते हैं दफ़्तर वक़्त से
घर लौट आते हैं देर सबेर घरवालों को कभी अस्पताल
में पड़े नहीं मिलते हैं

मैंन इस वर्ष देखे एक ख़ास किस्म के नौजवान रँगेचुँगे
चुस्त उठाकर अँगूठा रोकते हुए मोटर
सवारी का हक भाईचाराना माँगते
इस वर्ष कारें भी बढ़ी नौजवान भी
इस वर्ष मैंने देखा बल्कि एक दिन देखा
एक दिन अस्पताल एक दिन स्कूल के सामने
खड़ा हुआ एक लँगड़ा बूढ़ा एक दिन नन्हा लड़का पार
जाने को एक एक घंटे इन्तज़ार में
कि कोई कारवाला गाड़ी धीमी करे

इस वर्ष मैंने और भी देखा
कुत्ते जगह जगह कुचले
वे ठिठक गये थे जहाँ थे बीच रस्ते पर
उनके न ताक़त थी उनके न इच्छा थी कि दौड़कर बच जायें

यह रपट यहीं खत्म होती है चाहे एक मामूली बात और
जोड़ लें कि इस वर्ष मैंने और अधिक मोटर मालिक देखे नियम
तोड़ कर बायें हाथ से अगली गाड़ी से अगिया जाते हुए

उन लड़कों का यहाँ ज़िक्र तक नहीं किया गया
जो इन्हें देखकर खून का घूँट पीकर रह जाते हैं
क्योंकि उनमें से कोई दुर्घटना में शामिल नहीं हुआ

मुझे कुछ और करना था

मुझे कुछ और करना था
पर मैं कुछ और कर रहा हूँ
मुझे और कुछ करना था इस अधूरे संसार में मुझे
कुछ पूरा करना था मकान मालिक से वायदे के अलावा मुझे
इस डरावने समाज में रहकर चीखते रहने के अलावा कुछ
और मुझे
करना था इस ठसाठस भरे कमरे में हाथ में तश्तरी लिये
खड़े खड़े
खाते रहने के अतिरिक्त-रिक्त तश्तरी के अतिरिक्त-
तोड़ना था मुझे
बहुत कुछ इसी वर्ष
पर मैं बना रहा हूँ शीशे के सामने हजामत

गाना था गरजना था हँसना था मुझे शायद
कहीं शायद जाना था
सालन पकाना था समेटकर आस्तीन
हाँककर डराना था अकड़ू को
और भी बुलकारना था बड़बोले को
ललकारना था मुझे बाँके को
गोद में लेकर सुलाना था अपने हाथों पीटे हुए बच्चे को

मुझे कुछ और करना था हाँफते हुए नमस्ते करने के अलावा
आज सुबह
चकित नहीं रह जाना था मुझे देखकर
चालीस के आसपास का समाज
पर मैं चकित हूँ कि कब हो गये सब सफल लोग सफल

मैंने रोज़ रोज़ देखी एक बड़ी जाति के जबड़े में जाती एक
छोटी आस थी
पाँच राज्य के अकाल में जीवित रह जाने की शर्म ढोते हुए
मुझे कुछ करना था
पर मैं पुस्तकालय में बैठा हूँ

एक बार खोजता हूँ एक परिचित मुँह एक बार लपककर
फिर
एक मोटी किताब
जानना था जानना था जानना था
किस वक़्त देश का कामकाज हमउम्र लोगों के हाथ आ
गया
पर मैंने जाना कि यह समाज
विद्रोही वीरों का दीवाना है विरोध का नहीं

रामदास

चौड़ी सड़क गली पतली थी

दिन का समय घनी बदली थी
रामदास उस दिन उदास था
अंत समय आ गया पास था
उसे बता यह दिया गया था उसकी हत्या होगी

धीरे-धीरे चला अकेले
सोचा साथ किसी को ले ले
फिर रह गया, सड़क पर सब थे
सभी मौन थे सभी निहत्थे
सभी जानते थे यह उस दिन उसकी हत्या होगी

खड़ा हुआ वह बीच सड़क पर
दोनों हाथ पेट पर रखकर
सधे कदम रख करके आये
लोग सिमट कर आँख गड़ाये
लगे देखने उसको जिसकी तय था हत्या होगी

निकल गली से तब हत्यारा
आया उसने नाम पुकारा
हाथ तौलकर चाक़ू मारा
छूटा लोहू का फ़व्वारा
कहा नहीं था उसने आख़िर उसकी हत्या होगी

भीड़ ठेलकर लौट गया वह
मरा पड़ा है रामदास यह
देखो देखो बार-बार कह
लोग निडर उस जगह खड़े रह
लगे बुलाने उन्हें जिन्हें संशय था हत्या होगी

हँसो हँसो जल्दी हँसो

हँसो तुम पर निगाह रखी जा रही है

हँसों अपने पर न हँसना क्योंकि उसकी कड़वाहट
पकड़ ली जायेगी और तुम मारे जाओगे
ऐसे हँसों कि बहुत खुश न मालूम हो
वरना शक होगा कि यह शख्स शर्म में शामिल नहीं
और मारे जाओगे

हँसते हँसते किसी को जानने मत दो किस पर हँसते हो
सब को मानने दो कि तुम सब की तरह परास्त हेकर
एक अपनापे की हँसी हँसते हो
जैसे सब हँसते हैं बोलने के बजाय

जितनी देर ऊँचा गोल गुंबद गूँजता रहे, उतनी देर
तुम बोल सकते हो अपने से
गूँज थमते थमते फिर हँसना
क्योंकि तुम चुप मिले तो प्रतिवाद के जुर्म में फँसे
अन्त में हँसे तो तुम पर सब हँसेंगे और तुम बच जाओगे

हँसो पर चुटकुलों से बचो
उनमें शब्द हैं
कहीं उनमें अर्थ न हों जो किसी ने सौ साल पहले दिये हों

बेहतर है कि जब कोई बात करो तब हँसो
ताकि किसी बात का कोई मतलब न रहे

और ऐसे मौको पर हँसो
जो कि अनिवार्य हों
जैसे ग़रीब पर किसी ताक़तवर की मार
जहाँ कोई कुछ कर नहीं सकता
उस ग़रीब के सिवाय
और वह भी अक्सर हँसता है

हँसों हँसो जल्दी हँसो
इसके पहले कि वह चले जायें
उनसे हाथ मिलाते हुए
नज़रें नीची किये
उसको याद दिलाते हुए हँसो
कि तुम कल भी हँसे थे

भय

कितनी सचमुच है यह स्त्री
कि एक बार इसके सारे बदन का एक व्यक्ति बन गया है
उसके बाल अब घने काले नहीं
दुख उसे केशों का नहीं है
वह उदास नहीं डरी हुई है अधेड़ है औरत है
सुन्दर है
होनी की तसवीर एकदम उसके मन में चमक गयी है इस क्षण
वह जवानी में बहुत कष्ट उठा चुकी है
अब वह थोड़े थोड़े लगातार स्नेह के बदले
एक पुरुष के आगे झुक कर चलने को तैयार हो चुकी है
वह कुछ निर्दय पुरुषों को जानती है जिन्हें
उसका पति जानता है
और उसे विश्वास है कि उनसे वह पति के ही कारण
सुरक्षित है
वह हाथ रोककर एकटक देखती है हाथ
फिर पहले से धीमे कंघी को बालों में फेर ले जाती है उनके
सिरे तक
क़ैदी से छीन कर गाने का हक़ दे दिया गया होगा वह गाना
कि उसे जब चाहो तब नहीं जब वह बजे तब सुनो
बार बार एक एक अन्याय के बाद वह बज उठता है

वह सुनती होगी मेरी याद करती हुई
क्योंकि हम कभी कभी साथ साथ गाते थे
वह सुर में मैं सुर के आसपास

एक पालना होगा
वह उसे देखेगी और अपने बचपन की यादें आयेंगी
अपने बचपन के भविष्य की इच्छा
उन दिनों कोई नहीं करता होगा
वह भी न करेगी

आज का पाठ है

आज का पाठ है : मृत्यु के साधारण तथ्य
अनेक हैं; मुख्य लिखो

वह सब को एक सी नहीं आती
न सब मृत्यु के बाद एक हो जाते हैं
वैसे ही जैसे पहले नहीं थे

लाश वह चीज़ है जो संघर्ष के बाद बच रहती है
उसमें सहेजी हुई रहती है : एक पिचकी थाली
एक चीकट कंघी और देह के अन्दर की टूट
सिर्फ एक चीख बाहर आती है जो कि दरअसल
एक अन्दरूनी मामला है और अभी शोध का विषय है

तब वह-चीख नहीं-लाश भेज दी जाती है छपाई के लिए
अन्त में वह देसी भाषा की एक कविताई बन जाती है
विश्वव्यापी अंग्रेज़ी में तर्जुमा के लिए

मैं क्या कर रहा था जब मैं मरा
मुझसे ज़्यादा तो तुम जानते लगते हो
तुमने लिखा मैंने कहा था स्वाधीनता
शायद मैंने कहा था बचाओ

अब मैं मर चुका हूँ
मुझे याद नहीं कि मैंने क्या कहा था

जब एक महान संकट से गुज़र रहे हों
पढ़े लिखे जीवित लोग
एक अधमरी अपढ़ जाति के संकट को दिशा देते हुए
तब
आप समझ सकते हैं कि एक मरे हुए आदमी को
मसख़री कितनी पसन्द है
पर

तब मैं पूछूँगा नहीं कि सौ मोटी गरदनें
झुकी हैं
बुद्धि के बोझ से
श्रद्धा से
कि लज्जा से
मैं सिर्फ़ उन सौ गंजी चाँदों पर टकटकी बाँधे रहूँगा
-अपनी मरी हुई मशीनगन की टकटकी

कविता बन जाती है

हम लोग रोज़ खाते और जागते और सोते हैं
कोई कविता नहीं मिलती है
जैसे ही हमारा रिश्ता किसी से भी साफ़ होने लगता है
कविता बन जाती है।

अभी जीना है

मुझे अभी जीना है कविता के लिए नहीं
कुछ करने के लिए कि मेरी संतान मौत कुत्ते की न मरे
मैं आत्महत्या के पक्ष में नहीं हूँ तो इसलिए
कि मुझसे पहले मरें वे जो कि
मेरी तरह मरने को बाध्य हैं
कुछ नहीं करता हूँ मृत्यु के भय से मैं
सिर्फ़ अपमान से उनको बचाता हूँ
जिन्हें मृत्यु आकर ले जाएगी
दबे पाँव आहट को सुनता हूँ
और उसे शोर बनने नहीं देता हूँ
हाँ मैं कुछ करता हूँ जिसका
उपचार से कोई संबंध नहीं।

कविताओं के बारे में

पाठ्यक्रम में रघुवीर सहाय की अठारह कविताएँ हैं जो उनके चार प्रकाशित काव्य-संग्रहों से ली गई हैं। 'दे दिया जाता हूँ', और 'दुनिया' **सीढ़ियों पर धूप में** (1959 ई.) से, 'आत्महत्या के विरुद्ध' कविता इसी नाम के काव्य-संग्रह से ली गई है जो सन् 1967 ई. में प्रकाशित हुआ था। 'लुभाना', 'अंधी पिस्तौल', 'पैदल आदमी', 'सड़क पर रपट, 'मुझे कुछ और करना था', 'आज का पाठ है', 'हँसो हँसो जल्दी हँसो', 'भय' तथा 'रामदास' कविता **'हँसो हँसो जल्दी हँसो'** (1968 ई.) संग्रह की कविताएँ हैं। और 'कविता बन जाती है' रघुवीर सहाय के अंतिम प्रकाशित काव्य-संग्रह 'एक समय था' में संकलित है। 'अभी जीना है' कविता को भी पाठ्यक्रम में रखा गया है।

'दे दिया जाता हूँ' कविता में आधुनिक जीवन में टूटते हुए मानवीय संबंधों पर चिंता व्यक्त की गई है। परिस्थितियाँ मनुष्य को गढ़ती हैं, उसके समाज और सभ्यता का गठन करती हैं। भीड़ और शोर का जन्म इन्हीं प्रक्रियाओं के बीच हुआ। इस शोर के बीच व्यक्ति अपनी पहचान के लिए छटपटाता रहता है। आडंबर के कारण हमारी भीतरी शक्ति और मूल मानवीय भावों में खोखलापन आ जाता है। भीड़ के बीच अपनी अस्मिता की रक्षा कवि की मुख्य चिंता है। **'दुनिया'** कविता में अस्तित्ववादी अर्थहीनता का बोध है। बढ़ती हुई महत्वाकांक्षा ने मनुष्य को खुशामदी, ईर्ष्यालु और चुगलखोर बनाया। लोगों ने उदात्त मानवीय मनोभाव खो दिए हैं। स्वार्थ केन्द्र में आ गया है। उसी को केन्द्र में रखकर आचरण किए जाते हैं। खिसियाना, घिघियाना आदि स्वार्थ के ही विभिन्न रूप हैं। मनुष्य जब सिकुड़कर व्यक्ति हो जाता है तब किस प्रकार का अनुभव होता है, इस कविता में इसी मनोभाव को अभिव्यक्त किया गया गया है। **आत्महत्या के विरुद्ध** कविता के आरंभ में कर्तव्य की निष्क्रियता का बोध है। बौद्धिक बहस से उपजी निष्क्रियता पर कवि व्यंग्य करता है। सत्ता और राजनीति जनता को मूर्ख बनाकर अपने स्वार्थ के लिए कार्यरत है। कवि सृजन के लिए पूर्ण ध्वंस की आकांक्षा रखता है। झूठमूठ के टूटने को लेकर वह परेशान है। व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए शब्दों का अर्थहीन इस्तेमाल करता है और भाषा को ठूँठ बनाता जाता है। अमानवीय स्थितियों के विस्तार के बीच मानव बनना अपने आप में एक संघर्ष है। औपनिवेशिक मानसिकता के खिलाफ भी कवि संघर्ष करता है। नेहरू युग से विरासत में जो राजनीति देश में गतिशील हुई, वह बहुत ही भ्रष्ट थी। वास्तविकता से जनता को हटाने के लिए अलग-अलग नारे गढ़े जाते हैं। वर्ग, जाति और दल में बँटी विचारधारा के बीच कराहती मानवीयता को कवि इस कविता में अभिव्यंजित करने का प्रयास करता है। शब्द के साथ सच कहने की ताकत नहीं होती है तो भाषा में अर्थहीनता पैदा होती है। कवि इस अर्थहीनता के खिलाफ चेतावनी देता है।

लुभाना कविता में एक अधेड़ औरत की पीड़ा को कवि वर्णित करता है। चालीस के ऊपर की औरत का सोलह वर्ष की लड़की के समान खिलखिलाना गहरी करुणा को हमारे सामने

उपस्थित करता है। औरत के इस आडम्बर में मूल्यहीन समाज का चेहरा झलक उठता है। **'अंधी पिस्तौल'** कविता में शासन के प्रतिनिधि और जनसामान्य के बीच के फर्क को कवि रेखांकित करता है। वरदी पहनकर सामान्य मनुष्य ही शासन का प्रतिनिधि हो जाता है और वरदी खोलकर सौ फीसदी हिंदुस्तानी। शासन के नियामक कुछ ऐसे भी हैं, जो वरदी नहीं पहनते हैं लेकिन पूर्ण अधिकार रखते हैं। लोकतंत्र में यह शक्ति राजनेता को प्राप्त है। नेता यदि दृष्टिहीन होकर अपनी शक्ति का इस्तेमाल करता है तो वह जनता के लिए त्रासदायी हो जाता है। कवि इसी ध्येय को कविता में प्रस्तावित करता है। दर्दहीन राजनीति अपने स्वार्थ के लिए मानवीय मूल्यों की परवाह नहीं करती है। **पैदल आदमी** कविता में कवि विश्वबंधुत्व की भावना की स्थापना करता है। विश्वबंधुत्व की भावना को रचने के क्रम में वह राजनीति की पोल भी खोलता है। दो देशों की राजनीति किस प्रकार अपने शासन के लिए मानव के हृदय के बीच दीवार खड़ी करती है?

'सड़क पर रपट' कविता नाम से एक रपट जैसी लगती है। इस कविता में शासन की समकालीन वास्तविकता का यथार्थ वर्णन है। शासन की सत्ता के सामने मानव कितना असहाय और निरुपाय प्रतीत होता है। आदमी दिनों-दिनों अमानवीय व्यवस्था के सामने असहाय अनुभव करता है। अमानवीयता के खिलाफ यह दुबला और बोदा आदमी सड़क पर खड़ा है। वह चुनौतियों से लड़ने के लिए तैयार होता है। व्यवस्था का आंतक बढ़ने के साथ ही उसका प्रतिरोध भी बढ़ता है। कवि उन तटस्थ और निरपेक्ष लोगों पर व्यंग्य करता है जो तटस्थ भाव से अपना पल्ला झाड़ते रहते हैं। **'मुझे कुछ और करना था'** कविता में कवि समाज की अंतर्विरोधी मानसिकता पर व्यंग्य करता है। समाज एक प्रकार से यथास्थितिवाद का शिकार होता है। वह अपना विरोध बर्दाश्त नहीं करता है। उसमें विद्रोही की पूजा होती है लेकिन अपने समय में नहीं। मध्यवर्ग की ड्राइंगरूम की वास्तविकता के नंगे चित्र को कवि इस कविता में उपस्थित करता है। **'रामदास'** कविता में रोज़ रोज़ मरते लोगों की भीड़ में एक जीते-जागते व्यक्ति की विडम्बना के साक्ष्य से इस कविता का गठन हुआ है। रामदास मरते हुए आधुनिक समाज की ठोस वास्तविकता है। तटस्थता और निरपेक्षता का भाव रामदास की हत्या के लिए जिम्मेदार है। मनुष्य कितना संवेदनहीन और निष्क्रिय हो गया है कि किसी की हत्या भी उसके लिए महज एक सूचना बनकर रह जाती है। **'हँसो हँसो जल्दी हँसो'** कविता में ऊपरी स्तर पर हँसी है परंतु कहीं गहरे स्तर पर कविता में गहरी मानवीय पीड़ा उपजती है। यह पीड़ा भाषा के अर्थहीन होने की है। भाषा अर्थहीन होकर सर्जनात्मकता से चुक जाएगी। इस भाव से कविता का अर्थस्तर बिंधा हुआ है। कविता में अर्थ पाने के लिए उन शक्तियों से लड़ना अनिवार्य हो जाता है, जो भाषा को अर्थहीन बनाते हैं। कथनी और करनी के द्वैत को पाटकर ही हम भाषा को अर्थवान बना सकते हैं।

'भय' कविता में कवि पुरुष के वर्चस्ववादी समाज पर प्रश्नचिह्न लगाता है। आधुनिक समाज में नारी का मूल्य उसके सौन्दर्य से तय होता है। अधेड़ औरत को अपनी ढलती

जवानी का कड़ुवा अनुभव होता है। यौवन की बुझती चमक के बीच उसका फीका सौन्दर्य उसमें भय पैदा करता है। पुरुष उसे समाज की निर्दयता से बचाने का साधन मात्र है। सामाजिक असुरक्षा के बीच जीती हुई नारी में भय है। **'आज का पाठ है'** कविता में कला के सर्जनात्मक सत्य को कवि अभिव्यक्त करता है। मृत्यु यहाँ कला का पर्याय है। मृत्यु का अनुभव भी कला के अनुभव की तरह वैविध्यपूर्ण होता है। भाषा लाश की तरह बची रहती है। संघर्ष के मूल भाव को भाषा यथातथ्य प्रस्तुत नहीं कर सकती है। भाषा में इतनी ताकत नहीं होती है कि उसे एक प्रतीक के सहारे रचे। पाठक उन अनुभवों को अपनी तरह से ग्रहण करता है।

खाना, पीना, सोना पशु भी करते हैं। मनुष्य जैसे ही खाने-पीने-सोने से आगे जाकर समाज, जीवन, प्रकृति से अपने संबंधों की पड़ताल शुरू करता है तब कविता का बनना सत्य को पहचानना है। **'अभी जीना है'** कविता में मानवीय जिजीविषा और उसकी संघर्ष क्षमता को अभिव्यक्ति मिली है। नियति को जानते हुए भी उससे लड़ना मानव की अखंड संघर्षशीलता की पहचान है।

रघुवीर सहाय की कविता कहने के एक खास ढंग को विकसित करती है। कविता की पंक्तियों का वास्तविकता से संवाद निरंतर चलता रहता है। इस संवाद के अन्दर से ही कविता का जाल फैलकर विशिष्ट अर्थ को ग्रहण करता है। यहाँ कविता के शब्द अपनी गति से वस्तुओं पर आघात करते हैं। रघुवीर सहाय की कविता में घटना होती है। घटना में स्थितियों का वर्णन नहीं होता बल्कि कविता उन घटनाओं का संभावनात्मक उपयोग करती है। **'सड़क पर रपट', 'रामदास'**, आदि कविताओं में घटना व्यापक अर्थ की तस्वीर उकेरती हुई प्रतीत होती है। भाषा कवि के लिए अभिव्यक्ति की समस्या मात्र नहीं है। वह जीने की समस्या भी है। भाषा में अर्थक्षरण के कारण की पहचान रघुवीर सहाय की कविता में सबसे अधिक हुई है। उनकी कविता ऊपर से देखने में रपट की तरह सपाट लगती है परंतु कविता का मर्म जीवन की जटिल वास्तविकताओं की ओर संकेत करता है। सौन्दर्य और कला की जगह जीवन को प्रामाणिक और ईमानदारी से प्रस्तुत करना उनकी कविता का लक्ष्य है।

रघुवीर सहाय की कविता में वास्तविकता का दबाव अधिक है। वे जीवन और समाज की वास्तविक स्थितियों के बीच अपना आकार बनाती हैं। कवि जीवन के हर कोने से अपनी विषयवस्तु ग्रहण करता है। सत्ता और राजनीति से भी उनकी कविता परहेज नहीं करती है। सत्ता और राजनीति के गंदे खेल से वह जनता को आगाह करती है। व्यवस्था की विडम्बनाओं से तड़पती मानवीयता जनता में आक्रोश जग। ै। हमारे समय का आदमी कितनी तरह से उलझा हुआ, कितना विवश और अकेल ;, उसे यथातथ्य रचने की

लगातार कोशिश से उनकी कविता जूझती है। उलझी हुई परिस्थितियों से तटस्थ अथवा निरपेक्ष रहना वे अपराधबोध मानते हैं। उनकी कविता में व्यक्ति, समाज और भाषा के अवसरवादी इस्तेमाल के विरुद्ध मानवीय योग्यता के सकर्मक प्रयत्न का महत्व मिलता है। भाषा के धरातल पर उनकी कविता अनूठा प्रयोग करती है। वे साधारण से साधारण भाषा का प्रयोग कर उसके अर्थ की विराटता को रचने में निपुण हैं। इसलिए उनकी कविता भाषा की अभिव्यंजना की सामर्थ्य नहीं जीवन की सामर्थ्य पैदा करती है।

व्याख्या

हँसते-हँसते किसी को ..... बात का कोई मतलब न रहे।

साधारण शब्दों में कविता कहने का जोखिम उठाने वाले कवि हिंदी में कम ही हैं। रघुवीर सहाय उन कवियों में से एक हैं। रघुवीर सहाय जीवन स्थितियों और घटना को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करके भी कविता में अर्थ फलक की संभावना को विशिष्टता प्रदान करते हैं। **हँसो हँसो जल्दी हँसो** उनकी प्रतिनिधि रचना है। इस कविता में कवि भाषा और अभिव्यक्ति के संकट की पहचान करता है। भाषा में मनुष्य जीता है। भाषा में वह अपने को अभिव्यक्त करता है। भाषा में सच नहीं बोलने से भाषा का हृदय टूट जाता है।

हँसना अपने को अभिव्यक्त करने का पर्याय है। स्वयं की अभिव्यक्ति किसी न किसी भाषा में ही होगी। कविता में व्यंजना को महत्व दिया जाता है। व्यंजना से कविता की भाषा शक्ति का प्रमाण मिलता है। हँसी में अनन्त अभिव्यंजना का सौन्दर्य है परंतु प्रसंग और संदर्भ के साथ अर्थ की भंगिमा बदलती है। कवि ऐसे कठिन समय में बोलने का खतरा उठाता है। यदि बोलने को लोग कवि की हार समझते हैं तो समझें, कवि को उसकी परवाह नहीं है। वह अपनापे की हँसी हँसना चाहता है। कवि जो कुछ अनुभव करता है, जगत जीवन की जिन विषमताओं के बीच जीता है, उसे ही अभिव्यंजित करने का प्रयास करता है।

यथार्थ को तात्कालिक ढंग से रख देना रपट हो सकती है। साहित्य और रपट में अंतर है। अपनी आवाज का गोल गुंबद से टकराना तात्कालिक अनुभूति का संकेत करता है। यथार्थ को तात्कालिकता से मुक्त करने पर ही यथार्थ की साहित्यिक अभिव्यक्ति संभव है। कवि का निर्देश है गूँज थमते ही फिर हँसना। चुप और मौन को स्वीकार करना प्रतिरोध का प्रतीक है। जब कहने को बहुत कुछ हो ऐसी परिस्थिति में चुप हो जाना एक प्रकार का प्रतिरोध है। व्यक्ति के अकेले प्रतिरोध से समाज नहीं बदलता है। समाज की संगठित शक्ति से उसे बदला जा सकता है। अंत में हँसने का अर्थ स्पष्ट है। अंत में मंदबुद्धि के लोग हँसते हैं। मंदबुद्धि होना यहाँ चतुराई का प्रमाण है। मंदबुद्धि लोग जोखिम और चुनौती से बच निकलने का रास्ता ढूँढ लेते हैं। अंत में हँसना पलायन का भी प्रतीक है।

जीवन के साथ-साथ साहित्य का अर्थ भी बदलता है। बदलते समाज और जीवन को देखकर एक दृष्टि और विज़न बनता है। जहाँ इस प्रकार विज़न नहीं वहाँ साहित्य चुटकुलों से अधिक कुछ भी नहीं है। शब्द में अर्थ का संकट लगातार बना रहता है। कवि शब्दों में नई ज़िंदगी की खोज करता है। यदि कविता यह कार्य नहीं करती है तो साहित्य और चुटकुले के बीच जो अंतर है, वह अंतर ही मिट जाएगा। कवि शब्द और जीवन के जटिल संबंध को पहचान कर अर्थ का अन्वेषण करता है।

विशेष

1) पूरी कविता में भाषा की भ्रष्ट होती अभिव्यंजन क्षमता पर चोट है।

2) दैनिक अनुभवों के बीच कवि ने कविता के लिए स्पेस खोज लिया है।

3) कविता की मूल चिंता जीवन के अवसरवादी उपयोग की है।

4) मनुष्य वास्तविकता से बचने के लिए किस प्रकार का आचरण करता है, यह कविता उससे हमारा साक्षात्कार कराती है।